पारस परस

वर्ष-9 अंक-3 जुलाई-सितम्बर, 2019, रजि. नं.:यू.पी. एच.आई.एन./2011/39939 पृष्ठ -40 मूल्य- 25

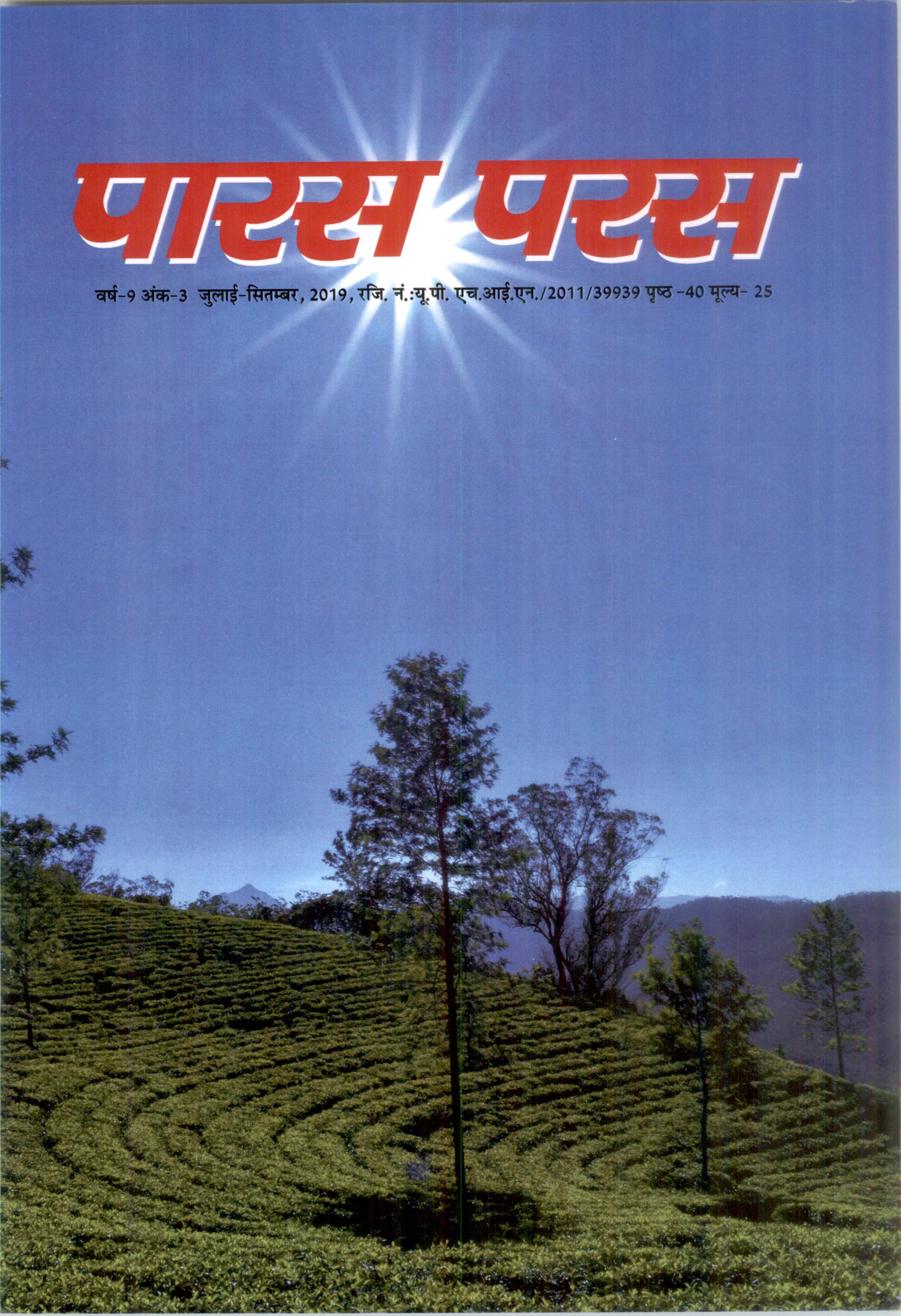

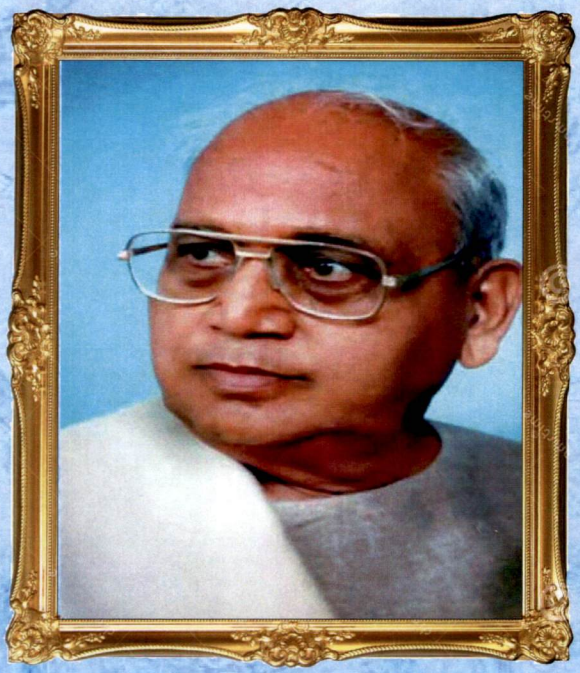

जगदीश गुप्त

जन्म- जुलाई 1924 निधन-16 मई 2001

वर्षा की बूँदों से शब्द शब्द धुलता है,
बूँदों की वर्षा से नया अर्थ खुलता है।
भावों के बादल घिर आते हैं,
घिर–घिर कर छाते हैं।
बूँदों की भाषा में सब कुछ कह जाते हैं
रिमझिम रिमझिम अक्षर–अक्षर, रस घुलता है।
भादों की कारी अन्धियारी में,
रह रह कर,
बिजली सी उक्ति चमक जाती है।
वाणी की सोने सी देह दमक जाती है।
वर्षा की बूँदों में,
बूँदों की वर्षा में।
शब्द अर्थ मिलते हैं,
जीवन सब तुलता है।

वर्ष : 9 अंक : 3 जुलाई-सितम्बर, 2019 रजि. नं. : यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस परस

हिन्दी काव्य की विविध विधाओं
की त्रैमासिक पत्रिका

संरक्षक
डॉ. एल.पी. पाण्डेय

प्रधान संपादक
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित

संपादक
डॉ. अनिल कुमार

कार्यकारी संपादक
सुशील कुमार अवस्थी

संपादकीय कार्यालय
538 क/1324, शिवलोक
त्रिवेणी नगर तृतीय, लखनऊ
मो. 9935930783
Email: paarasparas.lucknow@gmail.com

लेआउट एवं टाइप सेटिंग
मेट्रो प्रिंटर्स
लखनऊ

स्वामी प्रकाशक मुद्रक एवं संपादक डॉ. अनिल कुमार द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ उ.प्र. से मुद्रित तथा ए-1/15 रश्मि, खण्ड, शारदा नगर योजना, लखनऊ उ.प्र. से प्रकाशित।
सम्पादकः डॉ. अनिल कुमार

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय		2
श्रद्धा सुमन		
बस तेरे खो जाने से	डॉ. अनिल कुमार	4
पुण्य स्मरण		5
कालजयी		
किसी के मधुर मिलन की बात	पारस नाथ पाठक 'प्रसून'	6
अभिव्यक्ति का संकट	जगदीश गुप्त	7
तस्वीर और दर्पन	कन्हैया लाल नंदन	8
दिन भले ही बीत जाये क्वार के	उमाकान्त मालवीय	9
समय के सारथी		
मिट्टी पर मिट्टी	हीरा लाल	10
मेरे सपनों का भारत	अमिताभ रंजन झा	11
बाजार में	अनिल पाण्डेय	12
पर ऐसा लमहां न मिला	महेशचन्द्र द्विवेदी	13
सरिते! आँसू को पहुँचा दो	डॉ. किशोरी शरण शर्मा	14
डर	गोविन्द्र माथुर	15
चचा जुलाहे	आर.पी. शुक्ल	16
कलरव		
पर्वत कहता	सोहन लाल द्विवेदी	17
नाना जी	प्रकाश मनु	18
वर्षा आई	त्रिलोक सिंह ठकुरेला	19
लल्लू जी पतंग	शादाब आलम	20
नारी स्वर		
आँखें तरस रहीं मेरी दीदारे-यार को	कविता सिंह	21
विदेह में देह	अर्चना कुमारी	22
तुम्हारी हृदय रेखा	आरती मिश्रा	23
बाँसुरी सुनाई देती है	पुष्पा सुमन	24
दुख ही चरम सत्य है	विद्या विन्दु सिंह	25
द्वन्द्व का खेल	इन्दिरा मोहन	26
जो रुचे मन को	डॉ. शान्ति देवबाला	27
ब्रह्म-ज्ञान	उषा सिसोदिया	28
गजल	डॉ. ऋचा सत्यार्थी	29
उद्बोधन		
आओ बच्चों तुम्हें दिखायें	प्रदीप	30
भारत की आरती	शमशेर बहादुर सिंह	31
नवोदित रचनाकार		
भारत भूमि	सुरिन्दर रत्ती	32
ठहर गया वही	विनय के जोशी	33
मैं समय का गीत	ओम धीरज	34
जब डाल से फूल झरे	जियो लाल जैन	35
हो न निराश	देवेन्द्र कुमार मिश्रा	36
लम्बा रास्ता	सी.आर. राजश्री	37
मिलो दोस्त, जल्दी मिलो	अवधेश कुमार	38
वक्त कुछ यूँ थमा	शारदा अरोड़ा	39
कितना बतियाते हम	श्याम सखा 'श्याम'	40

पंचमहाभूत

सृष्टि का प्रारम्भ कब हुआ? कैसे हुआ? क्यों हुआ? आदि प्रश्नों का उत्तर विभिन्न संस्कृतियों, परम्पराओं में अलग–अलग तरह से प्राप्त होता है। यह तो निर्विवाद है कि सृष्टि की रचना बहुत ही पुरानी है किन्तु यह कितनी पुरानी है, इसका सही आकलन करना आज तक संभव नहीं हो सका है। इसके साथ ही सृष्टि के सृजन काल से भी अधिक महत्वपूर्ण इसके सृजन में सम्मिलित वे तत्व हैं जिनसे इसका सृजन हुआ है। भारतीय संस्कृति व परंपरा में ऐसी मान्यता है कि 'पंचमहाभूत' यानि क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर से ही सम्पूर्ण सृष्टि अर्थात् सृष्टि के सभी प्राणियों, वस्तुओं आदि का निर्माण हुआ है। इन पंच महाभूतों से निर्मित सृष्टि की समस्त रचना अन्ततः इन्हीं पंच महाभूतों में समाहित भी हो जाती है। सामान्य रूप से हमें दिखाई पड़ने वाले विभिन्न तत्व कहीं–न–कहीं इन पंच महाभूतों के ही विभिन्न रूप हैं। हमें कभी–कभी यह आभास होता है कि सृष्टि के अन्तर्गत असंख्य तत्व विद्यमान हैं। सामान्य बुद्धि से यह बात सही लगती है किन्तु यदि इन तत्वों के मूल को जानने व समझने का प्रयास करें तो अन्ततः हम उन्हीं पाँच मूल तत्वों यानि पंचमहाभूत पर पहुँच जाते हैं।

सृष्टि के निर्माण में पंचमहाभूतों की तात्विक उपस्थिति के साथ ही इन तत्वों के मध्य सामंजस्य एवं संतुलन महत्वपूर्ण है। कदाचित् इनके सामंजस्य व संतुलन से ही सृष्टि के संचालन में प्रकृति एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए हमें जीवन प्रदान करती है और साथ ही हमारा भरण–पोषण भी करती है। विचारणीय है कि प्रकृति के नैसर्गिक क्रिया–कलापों में दिन–प्रतिदिन बढ़ रहे मानवीय हस्तक्षेप से जहाँ यह सामंजस्य एवं संतुलन कुप्रभावित हो रहा है वहीं इन पंच महाभूतों के स्वरूप को भी विकृत करने का प्रयास किया जा रहा है। हालाँकि इन पंच महाभूतों के मूल स्वरूप को विनष्ट नहीं किया जा सकता है किन्तु यह हस्तक्षेप इनके बाह्य आवरण एवं परिवेश को, जो कि मानव एवं अन्य प्राणियों के जीवन एवं विभिन्न क्रिया–कलापों को सुचारु रूप से प्रवाहमान रखने के लिए आवश्यक है, प्रभावित अवश्य कर रहा है। और निश्चित रूप से, इन सभी का दुष्परिणाम विभिन्न जल स्रोतों यथा तालाब, पोखर, झील, नदियों के विलुप्त होने, वायु के प्रदूषित होने, अग्नि के विषाक्त होने, मृदा के दूषित होने एवं आकाश में विभिन्न हानिकारक गैसों की अदृश्य उपस्थिति के घातक प्रभाव के रूप में सहजरूप से देखा जा सकता है।

यहाँ उक्त विचारणा सोद्देश्य है और एक महत्वपूर्ण पौराणिक जलस्रोत 'तमसा' नदी के संदर्भ में आगे की जाने वाली चर्चा के लिए प्रयुक्त है। तमसा नदी अवध क्षेत्र की एक पौराणिक नदी है जिसके बारे में यह कहा जाता है कि श्रीराम जी ने चौदह वर्ष की अवधि के लिए वन–गमन करते समय अयोध्या से निकलकर प्रथम रात्रि में इसी नदी के तट पर विश्राम किया था और फिर अगले दिन से आगे की यात्रा प्रारंभ की थी। विभिन्न ग्रन्थों में भी इस नदी व इसकी घटना का उल्लेख पाया जाता है। वर्तमान में तमसा नदी का विस्तार जनपद अयोध्या से प्रारम्भ होकर अन्य जनपदों तक है। जनपद अयोध्या में जिलाधिकारी के रूप में महत्वूर्ण प्रशासनिक दायित्व प्राप्त होने पर मुझे तमसा की वास्तविक स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा हुई। इसी क्रम में ज्ञात हुआ कि इस नदी का एक बड़ा भाग विलुप्त हो चुका है। स्थानीय लोगों द्वारा उसे विभिन्न रूपों में अतिक्रमित कर लिया गया है और इसके कुछ भागों को तो कई वर्ष से पूर्ण रूप से अतिक्रमित किया जा चुका है। विभिन्न स्थलों पर तो यह स्थिति अत्यन्त भयावह पायी गयी। इन सबके बावजूद मन में यह संकल्प लिया गया कि इस पौराणिक नदी का पुनर्जीवन सांस्कृतिक दृष्टि से ही नहीं पर्यावरण की दृष्टि से भी किया जाना बहुत ही ज़रूरी है। लेकिन नदी की स्थिति को देखकर प्रथम दृष्टया ऐसा लगा कि यदि यह कार्य असंभव नही है तो अत्यन्त दुष्कर अवश्य है।

बचपन से ही इस सन्दर्भ में सुनी व पढ़ी गई विभिन्न कहानियों, आख्यानों के स्मरण के साथ ही दुष्यन्त कुमार जी की एक गज़ल की दो पंक्तियाँ याद आ गई –

कुमार जी की एक गज़ल की दो पंक्तियाँ याद आ गई –

''कौन कहता है आसमां में सुराख नहीं हो सकता
एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारों।।''

इसी तरह अन्य प्रासंगिक पंक्तियाँ, जो क्रमशः प्रसिद्ध गज़लकार शहरयार एवं महाकवि डॉ0 हरिवंश राय बच्चन द्वारा लिखित हैं, भी याद आयीं –

'कहिए तो आसमान को ज़मीं पर उतार लाएं,
मुश्किल नहीं है कुछ भी अगर ठान लीजिए।।'
'लहरों से डर कर नौका पार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती।।'

कोई भी कार्य प्रारम्भ में कठिन लगता है किन्तु यदि हम दृढ़ संकल्प कर लें तो कार्य प्रारम्भ भी होता है और पूर्णता को भी प्राप्त होता है। क्योंकि कहा भी गया है कि किसी भी कार्य की सिद्धि उद्यम से ही होती है केवल मन में इच्छा करने मात्र से नहीं :–

''उद्यमेन हि सिद्धयन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।।''

तमाम कशमकश के बीच में दृढ़ संकल्प के साथ जनपद अयोध्या में तमसा नदी के संपूर्ण विस्तार क्षेत्र का सर्वेक्षण कराकर एक कार्ययोजना तैयार कराते हुए इस काम को शीघ्रातिशीघ्र प्रारंभ करने का निर्णय लिया गया। जब यह कार्य प्रारम्भ हुआ तो इसमें शासकीय कर्मचारियों के साथ ही स्थानीय जनप्रतिनिधियों व जनता द्वारा बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया गया। सर्वेक्षण के पश्चात् प्राप्त हुई वास्तविक स्थिति के अनुसार प्रभावी कार्ययोजना बनाकर यह काम धरातल पर प्रारंभ कर दिया गया और थोड़े ही दिन में इसने जनान्दोलन का रूप ले लिया और इस कार्य में इतनी बड़ी जनसहभागिता मिली जो अपने आप में अनुकरणीय थी। तमसा के प्रति लोगों की आत्मीयता ने इस विलुप्त नदी को पुनर्जीवित कर दिया और जो तमसा अपने अस्तित्व को बचाने के लिए कराह रही थी उस तमसा में प्रवाहित हो रही जल की पावन लहरें उसे हर्षित व गौरवान्वित कर रही हैं।

निश्चित रूप से ऐसी व्यथा इस प्रदेश–देश के ही नहीं बल्कि अन्य देशों में भी विलुप्त हो रहे विभिन्न जल स्रोतों की होगी जो कि पंच महाभूतों के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण तत्व है और सभी के जीवन में इसकी महत्वपूर्ण उपयोगिता है क्योंकि कहा जाता है कि 'जल ही जीवन है'। जल संकट को देखते हुए ही कभी–कभी यह भी चर्चा होती है कि भविष्य में अगर विश्वयुद्ध होगा तो पानी के लिए होगा। निश्चित रूप से ऐसे प्रयास उन सभी जल स्रोतों के संरक्षण के लिए तो होने ही चाहिए साथ ही अन्य पंच महाभूतों के स्वरूप को विकृत होने से बचाने के लिए भी होने चाहिए तभी हम सभी सुरक्षित रह सकेंगे, स्वस्थ रह सकेंगे और प्रकृति के साहचर्य से समुचित विकास कर सकेंगे।

प्रस्तुत अंक आपके पास पहुँच रहा है जिसके लिए हमें अपार प्रसन्नता है। इस अंक के समस्त रचनाकारों, उनके परिवार एवं प्रकाशक आदि के प्रति हृदय से आभार प्रकट करते हुए भविष्य में भी यथावत् सहयोग की आशा करते हैं।

शुभ कामनाओं के साथ,

डा0 अनिल कुमार

बस तेरे खो जाने से

डॉ. अनिल कुमार पाठक

तेरे जाने से 'बाबूजी',
बस तेरे ही जाने से।
सबकुछ सूना, रीता, फीका,
बस तेरे खो जाने से।

गिरा पहाड़ दुःखों का सिर पर,
इक पल कटना भारी है।
दे दो पता मुझे भी अपना,
आने की तैयारी है।
तुम्हें पता हो या फिर ना हो,
हम विलख रहे अनजाने से।
सब कुछ सूना, रीता, फीका,
बस तेरे खो जाने से।

कहता कौन? फर्क ना पड़ता,
रहने या ना रहने से।
कोई आकर मुझसे पूछे कैसा,
लगता कैसा छत ढहने से।
पीर–हृदय की दूर न होगी,
केवल मन बहलाने से।
सब कुछ सूना, रीता, फीका,
बस तेरे खो जाने से।

वैसे भी मुझको क्या करना,
कोई माने, या ना माने।
हर धड़कन में तेरी स्मृति,
कोई जाने, या ना जाने।
'बाबूजी' दे दो नवजीवन,
आकर किसी बहाने से।
सबकुछ सूना, रीता, फीका,
बस तेरे खो जाने से।

❖❖❖

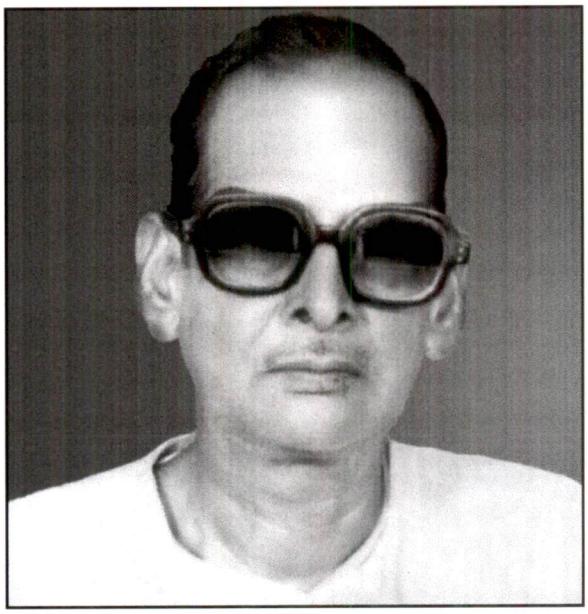

पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'

जन्म– 17 जुलाई 1932
निधन– 23 जनवरी 2008

तुम अनादि हो, तुम अनन्त हो, दिग्दर्शक, प्रेरक, अरिहन्त।
अजर, अमर, हे प्राणतत्व! तुम, कण-कण में व्यापी बसन्त।।

शिक्षाविद् व हिन्दी कविता के सशक्त हस्ताक्षर **स्व0 पारस नाथ पाठक 'प्रसून'** का जन्म उत्तर प्रदेश के जनपद–जौनपुर के गोपालपुर ग्राम में गुरुपूर्णिमा को हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय विद्यालयों से प्राप्त करने के पश्चात उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ, गोरखपुर विश्वविद्यालय तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से विभिन्न उपाधियाँ प्राप्त कीं। वे सर्वोदय विद्यापीठ इण्टर कालेज, मीरगंज, जौनपुर में हिन्दी विषय के प्रवक्ता पद पर कार्यरत रहे।

स्व. **'प्रसून'** की पावन स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिए **'पारस परस'** नाम से काव्य–त्रैमासिकी प्रकाशित करने का संकल्प लिया गया जो निर्बाध गति से चल रहा है।

स्वर्गीय 'प्रसून' जी के जन्मदिवस पर विनम्र श्रद्धांजलि

❖❖❖

किसी के मधुर मिलन की बात

पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

किसी के चल–चितवन के कोर, बुलाते हों जब अपनी ओर,
मिलन की किये प्रतीक्षा मौन, कर रहे इंगित से जब शोर।
सुधा से सिंचित ये दो नयन बने करुणा के जब आगार,
किसी की मौन प्रार्थना तब कहो कैसे न करूँ स्वीकार।

किसी की बाहों के दो छोर, खींचते हो जब अपनी ओर,
संकुचित अंगुलियों का संसार, हो रहा जब आनन्द विभोर।
कर रहे हों जब दो कोमल हाथ मधुर आलिंगन का व्यवहार,
किसी के मधुर मिलन की बात, कहो कैसे न करूँ स्वीकार।

किसी के जीवन का श्रृंगार, समर्पित करने को अपना संसार,
जाग कर जो दिन अरु रात पहुँच ही जाय किसी के द्वार।
उजड़ता हो बनकर तत्काल किसी का जब मधुमय संसार,
उपेक्षा कैसे कर दूँ हाय, नहीं सीखा ऐसा निष्ठुर व्यवहार।

किसी की अलसित–जीवन–नाव तरंगों से पाती हो जब घाव,
न जिसके चलने का कुछ दाँव, पवन से रुके हुए हों पाँव।
चाहता हो जो कुछ साहाय्य कि जिसका घर ही हो मझधार।
न होगा मुझसे ऐसा पाप छीन लूँ हाथों से पतवार।

❖❖❖

अभिव्यक्ति का संकट

जगदीश गुप्त

बहुत ही हलका लगेगा
'मैं तुम्हारा और तुम मेरे', कहूँ तो
और यदि यह कहूँ
'मेरे बीच तुम हो, मैं तुम्हारे बीच हूँ'
तो भी नहीं यह कथन इच्छित अर्थ देगा।

'लग रहा ऐसा कि जैसे
है, जहाँ तक भी हृदय का, चेतना का, प्राण का विस्तार,
उस सब में तुम्हीं तुम हो
तुम्हीं पर है टिका सब, दूसरा कोई नहीं आधार।
यह दुख–दर्द, हर्ष–विषाद, चिन्ता, जय–पराजय,
स्नेह, ममता, मोह, करुणा, ग्लानि औ' भय।
तुम्हीं से उत्पन्न होते, तुम्हीं में लय'।
भावमय यह कथ्य,
इसमें है बहुत कुछ तथ्य।
पर अतिरंजना भी है।

'जिस तरह कुछ भी नहीं है मित्र मेरा स्वयम् से,
तुमसे, तथा तुम पर समर्पित अहम् से।
भिन्नता होगी न वैसे ही तुम्हारे पास'
ऐसा ही मुझे विश्वास।
शायद इस तरह से कह सका होऊँ, हृदय की बात।
पर क्या सही है यह कह सका मैं ठीक पूरी बात?

❖❖❖

तस्वीर और दर्पन

कन्हैयालाल नंदन

कुछ कुछ हवा
और कुछ
मेरा अपना पागलपन।
जो तस्वीर बनाई
उसने
तोड़ दिया दर्पन।

जो मैं कभी नहीं था
वह भी
दुनिया ने पढ़ डाला
जिस सूरज को अर्घ्य चढ़ाये,
वह भी निकला काला।
हाथ लगीं– टूटी तस्वीरें
बिखरे हुए सपन।

तन हो गया
तपोवन जैसा
मन
गंगा की धारा।
डूब गये सब काबा–काशी,
किसका करूँ सहारा।
किस तीरथ
अब तरने जाऊँ ?
किसका करूँ भजन ?
जो तस्वीर...

❖❖❖

दिन भले ही बीत जाएँ क्वाँर के

उमाकांत मालवीय

दिन भले ही
बीत जाएँ क्वाँर के,
पर नहीं बीते अभी दिन ज्वार के।

अभी मैं सागर
अभी तुम चंद्रमा हो,
बिछ गई, मेरी लहर पर
चंदरिमा हो।
अभी तो हैं सिलसिले त्यौहार के।
रातरानी और हरसिंगार के।

अभी तो घर बार
घर की सौ नियामत,
अभी सीता की रसोई
है सलामत।
अभी सारे दिन लगें इतवार के।
फुर्सतों के, चुहल के तकरार के।

अभी है सम्बन्ध में
ख़ासी हरारत,
छेड़खानी, चुटकियाँ
मीठी शरारत।
अभी पत्ते हरे वन्दनवार के।
परिजनों के भेंट भर अँकवार के।

❖❖❖

मिट्टी पर मिट्टी

हीरा लाल

मुट्ठी भर मिट्टी डाल गया मेरी मिट्टी पर,
निकला जो भी कभी उधर से जहाँ मैं दफन था।

चाहा उठ खड़ा हो जाऊँ दफन के बाद भी,
उठता कैसे मेरी कब्र पर भारी वजन था।

न था ग़म, न अफ़सोस, थी सिर्फ़ फर्ज़ अदायगी,
कहीं और नहीं, जहाँ मरा, मेरा वतन था।

देख रहा आज भी अपने माज़ी का चेहरा,
उस वीरान वादी में जहाँ अपना चमन था।

आये मेरी मैयत पर दोस्त भी दुश्मन भी,
नहीं आया कोई तो वह मेरा ही सनम था।

पुरसाँहाल

कौन होता है पुरसाँहाल वक्त के मारों का,
जो भी होता है वह कोई फ़रिश्ता होता है।

बिगड़ जाता जब नसीब किसी का बदक़िस्मती से,
ऐसे बदनसीब पर दिल खुदा का रोता है।

खुशी और ग़म हैं दो पहलू बस वक्त के, यारों,
होता जैसा वक़्त पहलू भी वैसा होता है।

बेमानी है खुशी या ग़म उन फ़क़ीरों के लिये,
जिनके क़दमों के नीचे सारा जहाँ होता है।

ख़्वाहिशें खुदा है वक़्त के मारों की इमदाद,
करके देखिये खुदा को फ़रव्र कितना होता है।

❖❖❖

मेरे सपनों का भारत

अमिताभ रंजन झा

हर चेहरे पर मुस्कान हो, हर हाथों को काम हो,
गगन चुम्बी स्वाभिमान हो, हर भारतवासी कीर्तिमान हो।

वाणी में मिठास हो, सफलताओं की प्यास हो,
आलस्य को अवकाश हो, अनगिनत प्रयास हो।

कृषि का विकास हो, मंजिलें आकाश हो।,
अज्ञानता का नाश हो, हृदय में प्रकाश हो।

आतंक का संहार हो, अहिंसा का व्यवहार हो,
सबको सबसे प्यार हो, ऐसे संस्कार हों।

अन्न का भंडार हो, नित्य नये आविष्कार हों,
शिक्षा का संचार हो, प्रगति का विचार हो।

ज्ञान का सम्मान हो, विज्ञान का उत्थान हो,
रोगों की रोकथाम हो, भ्रष्टाचार का न निशान हो।

मुख पर मोहक हर्ष हो और भीषण संघर्ष हो,
सद्भाव का व्यवहार हो, किन्तु पराजय अस्वीकार हो।

नित्य नूतन प्रयोग हो, संसाधनों का सदुपयोग हो,
खोयी प्रतिष्टा पुनर्जित करे, लक्ष्य नये निर्धारित करे।

हर भारतीय आगे बढे, हरसंभव यत्न करे,
सौ बार हो विफल, एक और प्रयत्न करे।

मिल के ये लें शपथ, चलेंगे हम प्रगति पथ,
फिर ये स्वप्न साकार हों और ऐसा चमत्कार हो।

❖❖❖

बाजार में

अनिल पाण्डेय

बिक रहा था सब कुछ,
'कुछ' के साथ कुछ–
मिल रहा था उपहार में।

आलू, प्याज, टमाटर की तरह,
भाव, विचार, रीति, सुनीति।
सबके लगे थे भाव,
फुटकर नहीं थोक में।

लोग ख़रीद रहे थे,
सबके साथ सब,
कुछ के साथ सब,
एक के साथ सब,
कुछ को मिल रहा था–
कुछ व्यवहार में।

मैं खोज रहा था शिष्टाचार,
किसी ने चेताया,
यह नहीं नीति संसार में ,
तुम खड़े हो बाजार में ।

❖❖❖

पर ऐसा लमहा न मिला

महेशचन्द्र द्विवेदी

वे आये, जमकर बरसे।
फिर हवा के मानिंद उड़कर चले गए।
जैसे आये हों मुझे सराबोर कर,
ढेर–सी तपिश, मज़ीद ख़लिश बख़्शने के लिए।

क्या खूब होती है
तपिश जानेजानाँ से जुदाई की?
क़यामत के पहले ही झोंकती है,
इंसां के रूहोबदन को आतिश में जलने के लिए।
उनकी दी हुई ख़लिश
मैं रखे रहता हूँ सिर–माथे पर।
ख़लिश है तो दिल में धड़कन है,
लहू उफनता रहता है जो, उसे भरने के लिए।

उनका कहना है कि
फिर से बरसेंगे बरसात के आने पर।
उन्हें क्या ग़रज कि
तब तक यहाँ जहाँ, मेरा आशियां रहे न रहे?

उनके जाने के बाद,
ज़माना गुज़र गया उनको याद किये हुए।
पर ऐसा लम्हा न मिला,
जब दिल धड़का न हो उनसे वस्ल के लिए।

❖❖❖

सरिते! आँसू को पहुँचा दो

डॉ. किशोरी शरण शर्मा

सरिते! आँसू को पहुँचा दो,
मेरी माँ के पास अभी।
कह देना–वह विरत न होता,
माँ कहने से कहीं कभी।

आँखों से पानी की बूँदें,
मुझमें आ टपका देता।
अपने टूटे गीत सुनाकर,
जीवन को बहला लेता।

शैशव, माँ का ललित प्यार वह,
करता पल–पल याद तुझे।
कहता है–अकुलाती होगी,
माता करके याद मुझे।

सदन त्याग कर निर्जन में, वह–
तुझे याद करता रहता।
अधर विकम्पित से दिखते, वह,
चिन्तन में डूबा रहता।

कभी याचना करता तेरी ,
'सरिते! आँसू को पहुँचा।
माँ आवें स्नान हेतु तब,
मेरे आँसू उन्हें चढ़ा।

जीवन का क्या यहाँ ठिकाना,
राही का थक कर सो जाना।
'माँ' की सेवा में जीवन का,
सत्य छिपा है, उसको पाना।

यही सोचता चिन्ता करता,
जीवित रह 'माँ' कहता है।
सभी तरह के सुख पाकर भी,
'माता' के बिन जड़ता है।

❖❖❖

डर

गोविन्द माथुर

जबकि कोई दुश्मन नहीं है मेरा।
फिर भी डरा हुआ रहता हूँ
डर है कि निकलता ही नहीं।

दिखने में तो कोई दुश्मन नहीं लगता।
फिर भी पता नहीं
मन ही मन
किसी ने पाल रखी हो दुश्मनी।

ये सही है कि
मैंने किसी का हक नहीं मारा।
किसी कि जमीन–जायदाद नहीं दबाई।
किसी को अपशब्द नहीं कहे।
फिर भी मुझे शक है,
किसी भी दिन सामने आ सकता है दुश्मन।

सच और खरी–खरी कहना,
हँसी–हँसी में कटाक्ष करना,
झूठी प्रशंसा नहीं करना,
इतना बहुत है
किसी को दुश्मन बनाने के लिए।

सुझाव भी सहजता से नहीं लेते,
आलोचना तो बिलकुल बर्दाश्त नहीं करते,
किसी भी दिन मार सकते हैं चाकू,

सोचता हूँ चुप रहूँ,
पर कुछ भी नहीं बोलने को भी–
अपमान समझते हैं, लोग।

❖❖❖

चचा जुलाहे

आरपी शुक्ल

अपनी पैदाइश के दिन से,
तुम्हें देखता आया, चाचा।

धागों के तानें बुनते,
जटिल सृजन के इस प्रवाह में।
जब भी कोई धागा टूटा,
जोड़ दिये फिर तुरत सिरे।
बाँधे भी यूँ सिरे कि उनमें,
कोई गाँठ नहीं दिखती।

मैंने लेकिन आज तलक
जितने भी रिश्ते बाँधे।

अधिकांश टूट कर बिखर गये,
जो शेष बचे उनकी गाँठों को,
देख रहा हर कोई–हर पल,
कोरी–नंगी–आँखों से।

चचा जुलाहे! मुझे सिखा दो
धागों के शाश्वत रिश्ते।
कैसे जोड़े जाते हैं?
चचा जुलाहे
मुझे बता दो।

❖❖❖

पर्वत कहता

सोहन लाल द्विवेदी

पर्वत कहता
शीश उठाकर
तुम भी ऊँचे बन जाओ।
सागर कहता है
लहराकर
मन में गहराई लाओ।

समझ रहे हो
क्या कहती है
उठ, उठ गिर, गिर तरल तरंग।
भर लो, भर लो
अपने मन में
मीठी–मीठी मृदुल उमंग।
धरती कहती
धैर्य न छोड़ो
कितना ही हो सिर पर भार।
नभ कहता है
फैलो इतना
ढक लो तुम सारा संसार।

❖❖❖

नाना जी

प्रकाश मनु

नाना जी, ओ नाना जी,
कल फिर आना नाना जी।

बड़ी भली लगती कानों को,
अजी छड़ी की ठक–ठक–ठक।
और सुहाने किस्से जिनमें,
परियाँ, बौनों की बक–झक।
बुन ना पाता कोई ऐसा,
ताना–बाना नाना जी।

खूब झकाझक उजली टोपी,
लगती कितनी प्यारी है।
ढीला कुर्ता, काली अचकन,
मन जिस पर बलिहारी है।
नानी कहती–बचा यही एक,
चाव पुराना, नाना जी।

रोती छुटकी खिल–खिल हँसती,
जब चुटकुले सुनाते आप।
हँसकर उसे चिढ़ाते आप,
खुद ही मगर मनाते आप।
कोई सीखे अजी, आपसे,
बात बनाना, नाना जी।

सांताक्लाज दंग रह जाए,
ऐसे हैं उपहार आपके।
सरपट–सरपट बढ़ते जाते,
किस्से अपरंपार आपके।
सच बतलाओ, मिला कहीं से,
छिपा खजाना नाना जी।

नाना जी, ओ नाना जी,
कल फिर आना नाना जी।

❖❖❖

वर्षा आई

त्रिलोक सिंह ठकुरेला

रिमझिम–रिमझिम वर्षा आई,
ठंडी हवा बही सुखदाई।
बाहर निकला मेंढक गाता,
उसके पास नहीं था छाता।

सर पर बूँदें पड़ी दनादन,
तब घर में लौटा शर्माता,
उसकी माँ ने डाँट लगाई,
रिमझिम–रिमझिम वर्षा आई।

पंचम स्वर में कोयल बोली,
नाच उठी मोरों की टोली।
गधा रंभाया ढेंचू–ढेंचू,
सबको सूझी हँसी ठिठोली।

सब बोले अब चुपकर भाई,
रिमझिम रिमझिम वर्षा आई।
गुड़िया बोली चाचा आओ,
लो, कागज लो, नाव बनाओ।

कंकड़ का नाविक बैठाकर,
फिर पानी में नाव चलाओ।
नाव चली, गुड़िया मुसकाई,
रिमझिम रिमझिम वर्षा आई।

❖❖❖

लल्लू जी की पतंग

शादाब आलम

बातें करे हवा के संग,
लल्लू जी की लाल पतंग।

आसमान में लहर रही है,
एक जगह न ठहर रही है।
इधर भागती उधर भागती,
खूब करे मस्ती हुड़दंग।

हरी, गुलाबी, नीली, काली–
की, इसने छुट्टी कर डाली।
बीस पतंगें काट चुकी है,
बड़ी बहादुर, बड़ी दबंग।

सभी पतंगों से सुंदर है,
सबकी इस पर टिकी नजर है।
ललचाता है सबको इसका,
अति प्यारा मनमोहक रंग।

❖❖❖

आँखें तरस रहीं मेरी दीदारे-यार को

कविता सिंह

आँखें तरस रहीं मेरी दीदारे–यार को,
मिलता नहीं करार दिले–बेकरार को।

ऐ सोजे–हिज्रां आज जरा देर तक ठहर,
तन्हा न छोड़ देख गमों के दयार को।

अबके दिये हैं जख़्म हजारों बहार ने,
ले के कहाँ मैं जाऊँ दिले–दागदार को।

किस शहर में तलाश करूँ, जाऊँ मैं कहाँ,
ढूँढूँ कहाँ पर जाके अपने खाये प्यार को।

जालिम को मुझ पर आज भी आया नहीं रहम,
ठोकर से उसने मेरी उड़ाया मजार को।

दैरो–हरम में ढूँढ़ता है, अब ख़ुदा को तू,
भूला हुआ है रोजे अज़ल के करार को।

मरहम लगा रहा है वह आकर के ऐ वफा,
कह दो कि आने दे, अभी जख़्मे–बहार को।

❖❖❖

विदेह में देह

अर्चना कुमारी

किश्तों में मिली जिन्दगी के–
रंग बराबर रहे हरदम।
कि जाना स्वीकृत करने के बाद,
आने का आह्लाद संयत हो गया
कुछ निशान शेष खुरचनों के
स्पर्श के नाखूनों के
नकार दिया करीबियों को।
बचाए रखा संदेह,
जिज्ञासा नहीं बची,
जानने जैसी सामान्य बातों में
इतना समझ आते ही
कि गलत है जो भी है।
कच्ची उम्र ने गाँठ बाँध ली कसकर
कि बन्द कर ली आँखें
मूँद लिए कान।
लब सी लिए.....
उम्र का बोध लिए अबोध रही लड़की
सुलझा रही रहस्य देह का।
उसने विदेह होना चुना था कभी !!!

❖❖❖

तुम्हारी हृदयरेखा

आरती मिश्रा

कितनी घनी और गहरी रेखाओं का जाल बुना है।
तुम्हारी हथेलियों में
छोटी–बड़ी महीन–महीन रेखाएँ,
लगता है नन्हें बच्चे ने कोई
कागज गोद दिया हो।
मेरी आदत में शुमार हो चला है इनसे खेलते रहना,
छूना, टटोलना, खरोंचना,
कुछ पढ़ने की कोशिश करते रहना।
अटपटी हरकतों में मेरी यदा–कदा तुम भी उलझ जाते हो,
मेरे साथ–साथ कुछ पढ़ने की कोशिश करने लगते हो।
कुछेक के तो नाम भी पता हैं, तुम्हें
बाहर बारिश हो रही है,
मैं शीशे के पार गिरती बड़ी–बड़ी बूँदों को देखने लगी।
आज की रात अमावस जैसी काली और ख़ौफनाक थी,
और बिल्कुल भी डर नहीं रही थी, मैं।
तुम्हारे हाथ की रेखाओं के सौ–सौ स्पर्श ने–
थपथपा दिया मुझे,
उनमें से एक शायद वह हृदयरेखा होती है,
रात भर मेरे साथ जागती है।
जबकि तुम गहरी नींद में सो चुके होते हो।
वह मेरा हाथ थामकर
वही नज्म दोहराती है,
जिसे मैं बार–बार सुनना चाहती हूँ।

❖❖❖

बाँसुरी सुनाई देती है

पुष्पा सुमन

पानी में झाँकते सूरज की लालिमा दिखायी देती है,
नूतन संवत् की द्वारे पर बाँसुरी सुनाई देती है।

भूली–बिसरी स्मृतियों की घंटियाँ बज रही हैं, लेकिन,
उर की धरती नव–गीतों को फिर भी पहुनाई देती हैं।

कलरव, किलकारी बनी रहे, अपनी फुलवारी बनी रह,
माँ बनी रहे जो ममता की हमको अमराई देती है।

रोको इस पीढ़ी को वर्ना सुर सभी बेसुरे कर देगी,
पछुआ के कर में, पुरखों की मुखरित शहनाई देती है।

जीवन के रंग हजारों हैं, पूछो तो अपने अन्तर से,
इसकी आभा इन रंगों को कितनी रंगवाई देती है।

घर बाँटा, धरती भी बाँटी, कोमल रिश्ते भी बाँट दिये,
यह नफरत क्या इन्सानों को इतनी प्रभुताई देती है।

यह प्रीति बाटने वाली है, कोई जलता है, जला करे,
लेखनी हमारी दुनिया को केवल सच्चाई देती है।

तुम जहाँ रहो, दीखते रहो, कुछ अलग–अलग पहचान रहे,
गीतिका 'सुमन' की तुमको प्रिय शत् बार बधाई देती है।

❖❖❖

दुख ही चरम सत्य है

विद्या विन्दु सिंह

मन ही बोधिसत्व है,
दुख ही चरम सत्य है।
पाने का सुख, खोने का दुख,
दोनों ही अकथ्य हैं।

दुख ही चरम सत्य है।
होने का दुख, न होने का दुख,
चीलर भरी कथरी में,
जाग, जाग सोने का दुख।

फिर भी कथरी का मोह,
यही भवितव्य है।
दुख ही चरम सत्य है,
दुख देना, दुख पाना।

दुख सहना, दुख कहना,
दुख–दुख रटते होता,
राम नाम सत्य है।
दुख ही चरम सत्य है।

दुख पास रहता है,
हरि पास आते हैं।
पर हरि का आना,
हम कहाँ देख पाते हैं।

दुख में हरि का साथ,
यही परम पथ्य है।
दुख ही चरम सत्य है,
मन ही बोधिसत्व है।

❖❖❖

द्वन्द्व का खेल

इन्दिरा मोहन

कभी समय से थोड़ा आगे,
कभी समय से थोड़ा पीछे।
चलता रहता चक्र सनातन,
ऊपर–नीचे, नीचे–ऊपर।

रंजित मन सच समझ न पाये,
सुख की भी पहचान नहीं।
अपने मन का जो साक्षी है,
उसका ही सम्मान नहीं।

आँसू से भीगी मुस्कानें,
सुख–दुख रहते एक ठिकाने।
हास्य–रुदन का खेल पुरातन,
कटुतर–मधुमय, मधुमय–कटुतर।

परिवर्तन है नियम सृजन का,
नदियाँ बहतीं, सूखा पानी।
उपवन में पतझड़ जब उतरे,
रंग सभी उड़ जाते धानी।

तपती धरती, झाँके अंकुर,
तिनका–तिनका है क्षण भंगुर।
पतझड़ जाये, सावन आये,
डोमर–बंजर, बंजर–डोमर।

जो आया है सो जायेगा,
जन्म–मरण की अमिट लिखावट।
साँस–साँस का जोड़–घटाना,
धर्म, सत्य है झूठ मिलावट।

खेल द्वंद्व का खेल रहे हैं,
परमहंस सद्वचन कह रहे।
ईश्वर–जीव–जगत नित–नूतन,
नर–नारायण, नारायण–नर।

❖❖❖

जो रुचे मन को

डॉ. शांति देवबाला

छप रहा है, बार–बार,
यही घिसा–पिटा समाचार।
भारत का पचास प्रतिशत,
जा रहा है नीचे, नीचे और नीचे,
दरिद्र रेखा के नीचे।
यह खबर महज छपने के लिए,
न सुनने के लिए न गुनने के लिए।
छपा करे, कहीं भी छपे,/मुखपृष्ठ पर, आगे या पीछे।
समाचार–पत्रों की छाती पर,
कही पर भी हो अंकित।
मन पर अंकित करना नहीं,
स्मृति में संचित करना नहीं,
हम सब गांधी के अनुयायी,
गांधी के तीन बन्दरों का–
सन्देशा ही रहेगा इस देश में।
देखे नहीं, सुने नहीं, कहे नहीं।
आँख, कान, जबान के लिए,
देखने, सुनने, कहने को
बहुत कुछ है और भी तो,
जो रुचे मन को,
वही देखे, वही सुने, वही गुनें
अपने जाल आप बुनें
इस जंजाल में क्यों सिर धुनें।

❖❖❖

ब्रह्म-ज्ञान

उषा सिसोदिया

मनुष्य ने माना है–
सब जीवों में बसता ब्रह्म है।
मन्दिर में शीश नवाता है वह स्थापित मूर्ति को,
आस्था है उसकी कि उसमें ब्रह्म है।
बाहर मन्दिर की सीढ़ी पर बैठा बूढ़ा भिखारी,
जगा नहीं पाता विश्वास मनुष्य का–
कि उसमें मूर्ति से भी सजग ब्रह्म है।
धिक्कारता उसे मनुष्य बढ़ जाता है,
छिपाता बचाता देव पर चढ़ाया अपना प्रसाद।
कई बच्चे ललचाये से उसे घेर के खड़े हैं।
इन छोटे–छोटे ब्रह्मयुक्त शरीरों में,
मनुष्य केवल हीन–तुच्छ शरीर ही देख पाता है।
मनुष्य जानता है कि ब्रह्म सर्व व्यापी हैं,
किन्तु उसके अस्तित्व का भान
उसकी अपनी चाह अपनी वरीयता पर निर्भर है।
मनुष्य ने जो जाना है यदि वह माना भी होता,
तो सबको ब्रह्म समझ कर जाति–धर्म का यह झगड़ा फिर कहाँ होता?

❖❖❖

गजल

डॉ. ऋचा सत्यार्थी

कारवां गुज़रा किया और रहगुज़र देखा किए,
दूर जाते क़ाफ़िले को चश्मेतर देखा किए।

साथ अपने, अपने साये के सिवा कुछ भी नहीं,
उम्र भर रहकर अकेले अपना घर देखा किये।

इक जगह बस कर बना पाये न अपना आशियां,
जिन्दगी भर ये शहर, और वो शहर देखा किये।

कारवाँ लुटता रहा और आशियां जलता रहा,
तुमने आँखें मूँद ली थीं हम मगर देखा किये।

वक्त की दूकान पे हर चीज बिकती थी, मगर,
हम वफ़ा को घर से लेकर दर–ब–दर देखा किये।

बढ़ते–बढ़ते प्यास अपनी उस जगह तक आ गई,
जब न पानी मिल सका तो हम ज़हर देखा किये।

उम्र के हाथों से बरसों का ख़जाना लुट गया,
मुद्दतों इस खेल को हम बेख़बर देखा किये।

❖❖❖

आओ बच्चों तुम्हें दिखायें

प्रदीप

आओ बच्चों तुम्हें दिखायें झाँकी हिंदुस्तान की,
इस मिट्टी से तिलक करो, ये धरती है बलिदान की।
वंदे मातरम, वंदे मातरम ।

उत्तर में रखवाली करता पर्वतराज विराट है,
दक्षिण में चरणों को धोता सागर का सम्राट है।
जमुना जी के तट को देखो, गंगा का ये घाट है,
बाट–बाट में हाट–हाट में यहाँ निराला ठाठ है।
देखो ये तस्वीरें अपने गौरव की अभिमान की।
इस मिट्टी से .....

ये है अपना राजपूताना नाज इसे तलवारों पे,
इसने सारा जीवन काटा बरछी, तीर कटारों पे।
ये प्रताप का वतन पला है, आजादी के नारों पे,
कूद पड़ी थी यहाँ हजारों पद्मिनियाँ अंगारों पे।
बोल रही है, कण कण से, कुरबानी राजस्थान की।
इस मिट्टी से .....

देखो मुल्क मराठों का ये, यहाँ शिवाजी डोला था,
मुगलों की ताकत को जिसने तलवारों पे तोला था।
हर पर्वत पे आग लगी थी, हर पत्थर एक शोला था,
बोली हर–हर महादेव की, बच्चा–बच्चा बोला था।
यहाँ शिवाजी ने रखी थी, लाज हमारी शान की।
इस मिट्टी से .....

जलियां वाला बाग ये, देखो यहाँ चली थीं, गोलियाँ,
ये मत पूछो किसने खेली, यहाँ खून की होलियाँ।
एक तरफ बंदूकें दन, दन एक तरफ थी टोलियाँ,
मरनेवाले बोल रहे थे, इनकलाब की बोलियाँ।
यहाँ लगा दी बहनों ने भी बाजी अपनी जान की।
इस मिट्टी से .....

ये देखो बंगाल यहाँ का हर चप्पा हरियाला है,
यहाँ का बच्चा–बच्चा अपने देश पे मरनेवाला है।
ढाला है, इसको बिजली ने, भूचालों ने पाला है,
मुट्ठी में तूफान बंधा है और प्राण में ज्वाला है।
जन्मभूमि है, यही हमारे वीर सुभाष महान की।
इस मिट्टी से .....

❖❖❖

भारत की आरती

शमशेर बहादुर सिंह

देश–देश की स्वतंत्रता देवी,
आज अमित प्रेम से उतारती ।

निकटपूर्व, पूर्व, पूर्व–दक्षिण में,
जन–गण–मन इस अपूर्व शुभ क्षण में,
गाते हों, घर में हों या रण में,
भारत की लोकतंत्र भारती।

गर्व आज करता है, एशिया,
अरब, चीन, मिस्र, हिंद–एशिया,
उत्तर की लोक संघ शक्तियाँ,
युग–युग की आशायें वारतीं।

साम्राज्य पूँजी का क्षत होवे,
ऊँच–नीच का विधान नत होवे,
साधिकार जनता उन्नत होवे,
जो समाजवाद जय पुकारती।

जन का विश्वास ही हिमालय है,
भारत का जन–मन ही गंगा है,
हिन्द महासागर लोकाशय है,
यही शक्ति सत्य को उभारती।

यह किसान कर्मकर की भूमि है,
पावन बलिदानों की भूमि है,
भव के अरमानों की भूमि है,
मानव इतिहास को सँवारती।

❖❖❖

भारत भूमि

सुरिन्दर रत्ती

भारत भूमि संतों की भूमि,
हमारी संस्कृति की एक अलग छाप,
विश्व में शायद कहीं नहीं, ऐसी प्रथा,
प्रभु राम के वनवास जाने के पश्चात,
रामजी की चरण पादुका को ही अपना सर्वस्व मान कर,
राज्य किया भरत जी ने।
कितना आदर और प्यार झलकता है,
एक संदेश दिया विश्व को,
हम चरण पूजा करके भी–
निष्काम भाव से सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं,
चरण वंदना में हमारा ही लाभ छुपा है,
आशीर्वाद के रूप में,
ये लाभ बिना मूल्य के मिलता हो तो इसको पाने का,
प्रयास हमको अवश्य करना चाहिए।
ये आशीर्वाद एक रामबाण दवा और हथियार मिला,
जीवन की गाड़ी को चलाने की ऊर्जा,
चरण धूलि का भी एक अलग ही महत्त्व है।
चरण धूलि मस्तक पर लगा कर
लोग फूले नहीं समाते, अपना सौभाग्य मानते है।
समय बदला, युग बदला, पर–
हमारी संस्कृति हमारे शुद्ध विचार नहीं बदले,
संतों के आशीर्वाद से,
गुरु वंदना, हरी चरणों का रूप ध्यान करके,
अगर हमारे कष्टों का निवारण होता है–
तो हमें इसका प्रयास अवश्य करना चाहिए।

❖❖❖

ठहर गया वही

विनय के जोशी

सामने बैठे रहते तो कब याद आते हम
बात से यूँ ही
नई बात निकलती है,
रिश्तों में ऊष्मा हो
तो कड़वाहट मोम बन पिघलती है

दिन, दिवस, महीने
महान नहीं होते,
महान होते हैं, हमारे–
किये गये कार्य।

आज है काँटें तो बुरा हूँ, मैं,
कल जब फूलों पर चलोगी
तो क्या याद करोगी मुझको।

समय कभी किसी का–
साथ नहीं निभाता है,
पर जो इसका साथ निभाये
यह उसी का हो जाता है।

तब से
अब तक
उत्तर तलाशते
वेदना रहित
ठूठ की तरह जड़ होता
मेरा समय,
करवट न ले पाया
ठहर गया वहीं !!!

❖❖❖

मैं समय का गीत

ओम धीरज

मैं समय का गीत लिखना चाहता,
चाहता मैं, गीत लिखना आज भी।

जब समय संवाद से है, बच रहा,
हादसा हर वक्त कोई रच रहा।
साथ अपनी छोड़ती परछाईयाँ,
झूठ से भी झूठ कहता सच रहा।
शत्रु होतेइस समय के पृष्ठ पर,
'दूध–जल'–सा मीत लिखना चाहता।।

जाल का संजाल बुनती उलझनें,
नीड़ सपनों के अभी हैं, अधबुने।
हाथ में हैं हाथ जिनके हम दिये,
गाय की माने बधिक ही वे बने।
अब गुलामी के बने कानून की,
मुक्ति का संगीत लिखना चाहता।।

बाड़ ही जब बाग को है, खा रहा,
पेड़ आरे का पँवारा गा रहा।
आग लेकर, अब हवायें आ रहीं,
दृश्य फिर भी हर किसी को भा रहा।
हट सके गाढ़े तिमिर का आवरण,
आत्मचेता दीप लिखना चाहता।।

जब सहोदर रक्त के प्यासे बने,
माँ–पिता भी जैविकी खाँचे बने।
जिन्दगी क्लब के जुआघर में बिछी,
नेह के रिश्ते जहाँ पासे' बने।
मर रहे आँसू नयन के कोर में,
मैं सजल उम्मीद लिखना चाहता।।

❖❖❖

जब डाल से फूल झरे

जिओ लाल जैन

डाल से फूल झरे,
वसुन्धरा के अर्चि थे तुम,
गगन की उजली धूप थे,
सौन्दर्य के प्रतिमान थे तुम।
प्रकृति के शंख–घोष थे
प्रणय अकथ संदेश थे तुम।
हर डाल के श्रृंगार थे,
एक पल की देर थी, निष्प्राण हो भू पर गिरे।।
फूल झरे, डाल से फूल झरे।।

डाल पर जब तक रहे तुम
हँसते–मुस्कुराते रहे।
नारी की वेणी में सज तुम
धड़कनें उभारते रहे।
देवों के शीश चढ़े तुम
स्वर्ग निहारते रहे,
हँसते–हँसते तुम झरे, ये आँसू भरे।।
फूल झरे, डाल से फूल झरे।।

प्रकृति के उदर से जन्मे
अमर प्रेम के प्रतिबिम्ब तुम हो।
सुनहरी सुबह की शबनम में
झाँकते प्रकृति–प्राण तुम हो।
सुन्दर तन झर गया, क्या गया
लघु जीवन तुम्हारा ढल गया,
तुम जब भी झरे हँसते झरे, रंगों में जिए रंगों से मरे।।
जब डाल से फूल झरे।।

❖❖❖

हो न निराश

देवेन्द्र कुमार मिश्रा

माँझी हो न निराश,
जीवन सागर में उठते ज्वार।
प्रभु में आशा रख, विश्वास,
खेता चल, पतवार।

सुख–दुख का मेल है,
प्रकृति का खेल है।
खेलता चल इसे,
हिम्मत न हार।
जीवन सागर .....

शशि हो न उदास,
ग्रहण के बाद आये पूनम की रात,
हर रजनी के अंत में, आता सदा प्रभात
वक्त का कर इंतिजार।
जीवन सागर .....

क्रांति के बाद ही–
होता सदा सुधार,
पतझर के बाद आये,
बसंत बहार।
जीवन सागर .....

दृढ़ हो संकल्प
अटल रख विश्वास,
धैर्य और साहस से,
सिंधु करेगा पार।
जीवन सागर .....

❖❖❖

लम्बा रास्ता

सी.आर.राजश्री

देखो इन पैरों को .....
छोटे–छोटे ये खूबसूरत पाँव समय के साथ–साथ
पल– पल बढ़ते रहते,
गिरते, सम्भलते आगे चलते
ठोकर खाकर मजबूत बनते।
इन पैरों में अजीब सी शक्ति है,
मंजिल की ओर बढ़ने की गति है।
दुनिया में अपनी जगह बनाने की लगन है।
वक्त के संग–संग चलने की स्फूर्ति है,
क्षितिज तक पहुँचने की क्षमता है,
बुराईयों को जड़ से उखाड़ने का वैराग्य है।
तिमिर से जूझने का अडिग विश्वास है,
मुश्किलों का सामना करने का अटूट साहस है।
देखो देखो इन पैरों को .....
अपना हाथ देकर इन्हें सम्भालों,
सही रास्ता चुनने में इनकी मदद करो।
इन पर नजर रखो कहीं ये पैर भटक न जायें,
वक्त की बेड़ियों में बँधकर कहीं ये लड़खड़ा न जायें,
इनका हौसला बढ़ावो कहीं ये बहक न जायें।
देखो, देखो इन पैरों को .....
महसूस करो इनकी आहट को,
अरे! ये तो अपने ही बचपन की
आहट है, जिसे भी
अपनी तरह लंबा रास्ता तय करना है।

❖❖❖

मिलो दोस्त, जल्दी मिलो

अवधेश कुमार

सुबह––एक हल्की–सी चीख़ की तरह,
बहुत पीली और उदास धरती की करवट में,
पूरब की तरफ एक जमुहाई की तरह,
मनहूस दिन की शुरुआत में खिल पड़ी ।

मैं गरीब, मेरी जेब गरीब, पर इरादे गरम,
लू के थपेड़ों से झुलसती हुई आँखों में–
दावानल की तरह सुलगती उम्मीद।

गुमशुदा होकर इस शहर की भीड़ को,
ठेंगा दिखाते हुए न जाने कितने नौजवान,
कब कहाँ चढ़े बसों में और कहाँ उतरे,
जाकर यह कोई नहीं जानता।

कल मेरे पास कुछ पैसे होंगे,
बसों में भीड़ कम होगी,
संसद की छुट्टी रहेगी,
सप्ताह–भर के हादसों का निपटारा–
हो चुकेगा सुबह–सुबह,
अख़बारों की भगोड़ी पीठ पर लिखा हुआ।

सड़कें ख़ाली होने की हद तक बहुत कम–
भरी होंगी, पूरी तरह भरी होंगी, दोपहर को–
जलाती हुई, इस शहर का कलेजा।

और किस–किस का कलेजा नहीं जलाती हुई,
यह दोपहर आदमी को नाकामयाब करने की–
हद तक डराती हुई, उसके शरीर के चारों तरफ।

मिलो दोस्त, जल्दी मिलो
मैं गरीब, तुम गरीब,
पर हमारे इरादे गरम।

❖❖❖

वक्त कुछ यूँ थमा

शारदा अरोड़ा

वक्त कुछ यूँ थमा
लम्बी–लम्बी यात्राएँ
कदमों में कुछ यूँ ठहरीं,
कदम बोलते खड़े
वक्त ठहर गया।
वक्त कुछ यूँ थमा
घड़ी की टिक–टिक–
तयशुदा समय ले कर
साँझ आई।
मंजर बदल गया।
वक्त कुछ यूँ थमा।
जीवन कुछ यूँ थमा।
वक्त है बोलता खड़ा,
निशान बोलेंगे,
सफर बदल गया,
सुबह के पास कहीं–
अँधेरा गहरा है,
काली रातों का पहरा है।
काल के हाथ कहीं
जीवन बहल गया।
वक्त चलता रहा
सुबह और शाम,
दिन–रात वक्त चलता रहा,
तू सोया रहा,
वक्त सपने भरता रहा,
रात से डरा तू
ख़ुद को छलता रहा,
सुबह का राज
रात के सीने मई पलता रहा।
क़दमों की लकीरों के परे
वही देख पायेगा,
भोर की किरण
जो जमीं से जुदा–
और वक्त की डोर थामे चलता रहा।
अक्स
काल चक्र चलता रहा,
आदमी हिलता रहा।
कदम जब जब रुके,
वक्त का पहरा रहा।
कैद कर लिये क़दमों में,
नक्श बोलते खड़े,
वक्त तो थमा नही ,
अक्स बोलते खड़े।

❖❖❖

कितना बतियाते हम

श्याम सखा 'श्याम'

समय सीमा
न रहती तो
बहुत देर बतियाते हम,
अगर
सामने बैठे रहते तो कब याद आते हम।
बात से यूँ ही
नई बात निकलती है,
रिश्तों में ऊष्मा हो
तो कड़वाहट मोम बन पिघलती है।
मोम की देह में
धागे की अस्थियाँ रहती हैं,
मन में
पीड़ा,
पीड़ा में
खण्डित सपनों की बस्तियाँ रहती हैं।
हर धड़कन
बस यही बात मुझसे बार–बार कहती है,
समय के साथ–साथ
देह,
देह के साथ–साथ–
साँस
साँस के साथ ही तो
आस की नदियाँ बहती है।
जो बस एक बात कहती है–
सपनों में
मन, हीरामन बन जाता है।
एक
एक के बाद दूसरी
फिर आखिरी
यानि तीसरी कसम खाता है।
तीसरी कसम
यानि मोह से दूर रहेगा,
अपनी
व्यथा नहीं किसी से कहेगा।
कहने–सुनने–
में फिर समय सीमा–
की बात आ जाती है,
उजला सा दिन होता है, खत्म,
स्याह रात आ जाती है।
अन्धेरे में
नयनों के दीप जगाते हम,
समय सीमा
न रहती तो कितना बतियाते हम।

❖❖❖

सृजन स्मरण

कन्हैयालाल नंदन

जन्म- 01 जुलाई 1933 निधन- 25 सितम्बर 2010

अंगारे को तुम ने छुआ और–
हाथ में फफोला नहीं हुआ।
इतनी सी बात पर
अंगारे पर तोहमत ना लगाओ,
जरा तह तक जाओ।
आग भी कभी–कभी
अपना धर्म निभाती है,
और जलने वाले की
क्षमता देख कर जलाती है।

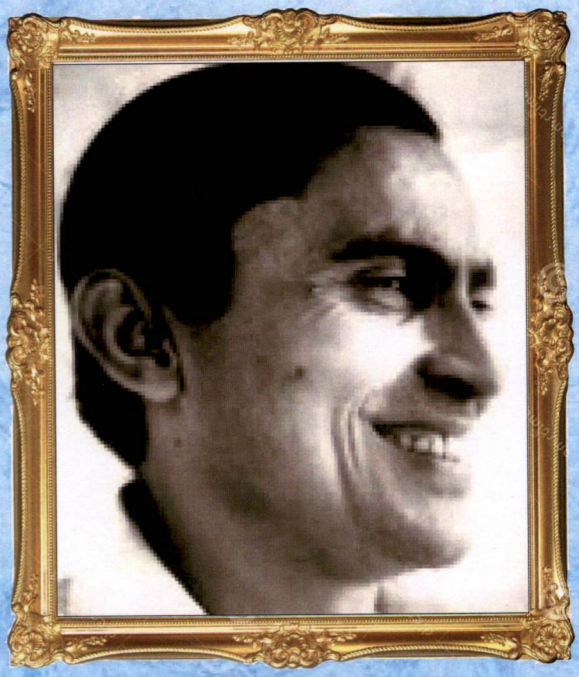

उमाकांत मालवीय

जन्म- 02 अगस्त 1931 निधन- 11 नवम्बर 1982

जिन्दगी नेपथ्य में गुजरी
मंच पर की भूमिका तो सिर्फ अभिनय है ।
मूल से कट कर रहे
परिशिष्ट में,
एक अंधी व्यवस्था की दृष्टि में ।
जिन्दगी तो कथ्य में गुजरी।
और करनी
प्रश्न से आहत अनिश्चय है ।
क्षेपकों के
हाशियों के लिए हम,
दफन होते
कागजी ताजिए हम।
जिन्दगी तो पथ्य में गुजरी।
और मन बीमार का परहेज संशय है ।